**ओ३म्**

**‘महर्षि दयानन्द का प्रो. मैक्समूलर पर चमत्कारिक प्रभाव’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

प्रोफेसर मैक्समूल जर्मनी में जन्में इंग्लैण्ड के निवासी और संस्कृत के जानकार विद्वान थे। अंग्रेजों ने भारत में अपने ब्रिटिश राज्य व ईसाईयत की गहरी जड़े जमाने के लिए उनका उपयोग किया था। उन्हें आर्थिक प्रलोभन व सहायता का प्रस्ताव किया गया था जब कि उन्हें इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। वह ईसाई मत के अनुयायी थे अतः ईसाईयत की सेवा करना उनका कर्तव्य कहा जा सकता है। अतः विवशता और अपने मत की सेवा के लिए उन्हें वेदों के मिथ्या व विद्रूप अर्थ करने का कार्य करना पड़ा। उन्होंने यह कार्य इसलिए भी किया था क्योंकि वह कोई बहुत बड़े वैदिक विद्वान, ऋषि व योगी नहीं थे जो अपनी आत्मा व सत्य के विरुद्ध आचरण नहीं करता। उनकी दूसरी विवशता आर्थिक थी। अतः उन्होंने भारत में शासन कर रहे अंग्रेजों का प्रस्ताव स्वीकार कर उसे पूरा किया। अपने इसी कार्य के अन्तर्गत उन्होंने जहां आक्सफोर्ड में कार्यरत रहते हुए भारत आने वाले अंग्रेज अधिकारियों को भारत के प्राचीन धर्म व संस्कृति के विरोधी व्याख्यान दिये वहीं चारों वेदों का अंग्रेजी में आप्रमाणिक भ्रान्तिपूर्ण भाष्य व अनुवाद कर उसे सरकारी सहायता से प्रकाशित कराया था।

 प्रो. मैक्समूलर पर महर्षि दयानन्द के विचारों का प्रभाव उनकी चारों वेदों की भूमिका के रूप में लिखे गये प्रसिद्ध ग्रन्थ **‘ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका’** के द्वारा हुआ। यह ग्रन्थ मासिक रूप से क्रमानुसार प्रकाशित होता था जिसे मैक्समूलर के इंग्लैण्ड के पते पर भेजा जाता था। महर्षि दयानन्द द्वारा इस ग्रन्थ का प्रणयन अगस्त, 1876 में आरम्भ किया गया था। वैदिक विद्वान स्वामी विद्यानन्द सरस्वती अपनी भूमिका भास्कर ग्रन्थ के परिशिष्ट में लिखते हैं कि यद्यपि मैक्समूलर प्रत्यक्षतः भारत में नहीं आ सके, परन्तु अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे भारत व भारतीयता के प्रशंसक रहे। यह उनके **‘India : What can it teach us?’ (भारत से हम क्या सीखें?)** में व्यक्त विचारों से स्पष्ट है। आक्सफोर्ड में रहते हुए अपने प्रारम्भिक वर्षों में उनके लिए अपने अन्नदाताओं को सन्तुष्ट रखना आवश्यक था। इसलिए उस अवधि में उन्होंने जो कुछ लिखा वह उनकी उस समय की स्थिति का परिणाम था। बाद में उनके विचारों में जो परिवर्तन आया, उसके दो कारण थे-

 1--अपनी अन्तरात्मा का विद्रोह-प्रो. मैक्समूलर की आर्थिक विपन्नता के कारण अपनी आत्मा का सौदा करके लार्ड मैकाले की दासता स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा था। इस आत्म समर्पण के कारण उसकी आत्मा उसे सदा कचोटती रही। इसलिए जैसे ही उसे इस स्थिति से उबरने का अवसर मिला, वैसे ही उसका मन विद्रोह कर उठा और भीतर की बातें बाहर आने लगी।

 2--ऋषि दयानन्द की मान्यताओं से परिचय--मैक्समूलर ने लिखा है **‘‘भारतीय वांग्मय की प्राचीनतम कृति ऋग्वेद के दो संस्करण मासिक रूप में प्रकाशित हो रहे हैं-एक बम्बई से और दूसरा प्रयाग (इलाहाबाद) से। पहले में मूल संस्कृत टीका तथा उसका मराठी और अंग्रेजी में अनुवाद रहता है और दूसरे में संस्कृत में विस्तृत व्याख्या तथा हिन्दी में उसका अनुवाद रहता है। ये ग्रन्थ ग्राहकों के चन्दे से प्रकाशित हो रहे हैं। ग्राहकों की संख्या पर्याप्त है।”** **(Of the Rigveda, the most ancient of Sanskrit books, two editions are now coming out in monthly numbers. The one published at Bombay by what may be called the liberal party. The other at Prayag (Allahabad) by Dayanand Saraswati, the representative of Indian orthodoxy. The former gives a paraphrase in Sanskrit and Marathi and English translation, the latter a full explanation in Sanskrit, followed by a vernacular (Hindi) commentary. These books are published by subscription and the list of subscribers among the natives of India is very considerable--India : What can it teach us)**

 प्रोफेसर मैक्समूलर स्वामी दयानन्द द्वारा प्रयाग से मासिक रूप में प्रकाशित हो रहे ऋग्वेदभाष्य के नियमित ग्राहक थे और उनका नाम मुखपृष्ठ पर प्रकाशित ग्राहकों की सूची में शामिल था। स्वामीजी कृत ऋग्वेदभाष्य को पढ़कर मैक्समूलर की आंखे खुली और उसके विचार पलटा खाने लगे। सन् 1882 में कैम्ब्रिज में मैक्समूलर के कुछ व्याख्यान हुए जो सन् 1883 में **‘India : What can it teach us?’** नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इन व्याख्यानों में स्वामी दयानन्द, वेद और भारत के सम्बन्ध में मैक्समूलर का स्वर बदला हुआ था। कभी मैक्समूलर ने स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था--**‘‘स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद का संस्कृत में भाष्य किया है, पर उनके समूचे साहित्य में ऐसा कुछ नहीं है जिसे मौलिक कहा जा सके, सिवा इसके कि उन्होंने वैदिक शब्दों और वाक्यों के कुछ विचित्र अर्थ किये हैं।”** ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़ने के बाद मैक्समूलर ने इस महान् ग्रन्थ को संस्कृत साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए स्वामी दयानन्द और उनकी कृति का इन शब्दों में स्तवन किया --**‘सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य को हम ऋग्वेद से आरम्भ करके दयानन्द की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तक दो भागों में बांट सकते हैं।’** **(We may divide the whole of Sanskrit literature, beginning with the Rigveda and ending with Dayananda’s Introduction to his commentary of the Rigveda, into two parts.—India : What can it teach us, P.102)** इस प्रकार मैक्समूलर ने जहां संस्कृत साहित्य के एक ध्रुव पर ऋग्वेद को रक्खा वहां दूसरे धु्रव पर दयानन्द की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को प्रतिष्ठित किया।

सन् 1866 में मैक्समूलर ने **‘चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप’**संस्करण 1866, पृष्ठ 27 पर प्रकाशित किया था--**‘‘वैदिक सूक्तों की एक बहुत बड़ी संख्या बिल्कुल बचकानी, जटिल, निकृष्ट और साधारण है। उनमें न परस्पर संगति है और न सुलझे हुए अर्थों की स्थापना। वेद धार्मिक विश्वासों के विजडि़त पोथे हैं जिनका अधिकांश भाग बुद्धिगम्य नहीं है। मानवजाति के सीखतड़ बच्चे जिस आश्चर्य से जगत को देखते हैं, उसी की छाया मन्त्रों में है।”** उन्हीं मैक्समूलर ने सन् 1882 में लिखा--**‘‘वेद में जैसी भाषा पाई जाती है, उसमें जैसा जीवन दर्शन है और जैसे धर्म का वर्णन होता है, उनमें जो दृश्यावली दृष्टिगत होती है, वर्षों में तो कोई उसकी दूरी नाप नहीं सकता। वेद में ऐसी भावनाओं का प्रकाश हुआ है जो हम यूरोपियनों को उन्नीसवीं शती में आधुनिक प्रतीत होती है। उससे अधिक प्राचीन साहित्यिक कृति का हमें नाम भी सुनने को नहीं मिला। मानव विचारधारा के इतिहास के विषय में जो महत्वपूर्ण जानकारी हमें वेद से मिलती है वह वेदों की खोज से पूर्व हमारी कल्पना से भी परे थी।” (हम भारत से क्या सीख सकते हैं? पृष्ठ 130)**

सन् 1868 में मैक्समूलर ने अपने पुत्र को लिखे पत्र में वेदों का इन तिरस्कारपूर्ण शब्दों में अवमूल्यन किया था-**‘‘संसार की सब पुस्तकों में नया अहदनामा (Bible or New Testament), सर्वोत्कृष्ट है। इसके पश्चात् कुरान को, जो एक प्रकार से बाइबल का रूपान्तर है, रक्खा जा सकता है। तत्पश्चात् पुराना अहदनामा (Old Testament), बौद्ध त्रिपिटक, वेद और अवेस्ता है।”** बाद में सन् 1883 में मैक्समूलर ने इन शब्दों में वेद का प्रशस्तिगान किया-**‘‘यदि हम उस स्रोत को जानना चाहते हैं जो मनुष्य के चरित्र का निर्माता है, विचारों का प्रेरक एवं कार्यों का नियन्ता है, जो भारत के निम्नतम वर्गीय से लेकर उच्चतम वर्गीय व्यक्ति को प्रभावित एवं अनुप्राणित करता है तो हमें भारतीयों के धर्म से परिचित होना चाहिए जिसकी भित्ती वेद की आधारशिला पर है।” सन्दर्भ-हम भारत से क्या सीख सकते हैं, पृष्ठ 228**

**“यदि किसी को मानव जाति का अध्ययन करना हो, या आप चाहें तो यूं कह सकते हैं कि यदि किसी को आर्य जीवन के विषय में अध्ययन करना हो तो उसके लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण होगा। संसार का कोई भी साहित्य इस क्षेत्र में वैदिक साहित्य की तुलना में ठहर नहीं सकता।” वही, पृष्ठ 124**

**“भारतीयों के इतिहास, धर्म, दर्शन, कानून इत्यादि को समझने के लिए, यह अनिवार्य है कि उनका अध्ययन वेद से हो। बिना वेद के आधार के हिन्दू धर्म का पूर्ण ज्ञान असम्भव है।” (No one will ever understand the religious, philosophical, legal and social opinions of the Hindus who is unable to trace them back to their true sources in the Vedas—India 126)**

**“लोगों ने वेद की महत्ता को कम करने के प्रयत्न कम नहीं किये, पर उसका महत्व आज भी वैसा ही है। आज भी धार्मिक, सामाजिक या दार्शनिक विवादों में वेद को ही अन्तिम प्रमाण माना जाता है।”--वही, 227**

इसी सन्दर्भ में संस्कृत की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा- **‘‘संस्कृत साहित्य में ऐसा क्या मिलेगा जो विश्व के अन्य साहित्यों में नहीं मिलता। इस प्रश्न के उत्तर में मेरा कथन है कि संस्कृत साहित्य में हमें वास्तविक आर्य के दर्शन होते हैं। इन आर्यों को हम यूनानी, ईरानी, रोमन, जर्मन, कैल्ट तथा स्लाव लोगों के रूपों में देख चुके हैं। परन्तु जिस आर्य का पता हमें संस्कृत साहित्य में मिलता है, उसका व्यक्तित्व इन सबसे निराला है।”--वही, 108**

लेख की सीमा को देखते हुए हम अनेकों महत्वपूर्ण उद्धरणों को छोड़ते हुए केवल एक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इन पंक्तियों में प्रो. मैक्समूलर ने जो लिखा है उसके लिए उनके हाथों को चूमने की इच्छा होती है। वह लिखते हैं कि **‘यह निश्चित है कि हम सब पूर्व से ही आये हैं। इतना ही नहीं, हमारे जीवन में जो कुछ मूल्यवान् और महत्वपूर्ण है, वह सब हमें पूर्व से ही मिला है। ऐसी स्थिति में जब भी हम पूर्व की ओर जायें तब हमें यह सोचना चाहिए कि पुरानी स्मृतियों को संजोये हम अपने पुराने घर की ओर जा रहे हैं।’ (“We all come from the East—all that we value most has come to us from the East and by going to the East every body ought to feel that he is going to his ‘old home’ full of memories, if only we can read them.”--P.21).**

प्रो. मैक्समूलर के विचारों में भारत और वेदों के प्रति जो वैचारिक परिवर्तन आया उसका एकमात्र कारण प्रो. मैक्समूलर का महर्षि दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित यजुर्वेद तथा ऋग्वेद भाष्य का अध्ययन था। एक जर्मन मूल का ब्रिटिश नागरिक महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य से इतना अधिक प्रभावित हो सकता है, इसे हम दयानन्द का जादू ही कह सकते हैं जबकि भारत में जन्में नाम मात्र के शिक्षित विद्वान अपने व्यक्तिगत तुच्छ लाभों के लिए विदेशियों के शरणागत हो जाते हैं और उनके द्वारा सिखाये गये असत्य का ही प्रलाप करते हैं। प्रो. मैक्समूलर भारत आकर महर्षि दयानन्द के जीवन का अध्ययन कर उनका जीवन चरित भी लिखना चाहते थे जिसके लिए उन्होंने प्रस्ताव किया था। किन्हीं कारणों से यह महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो सका। देश में प्रचलित अन्धविश्वासों व इनसे कुछ लोगों के हित व स्वार्थौं के जुड़े होने कारण महर्षि दयानन्द को वेद प्रचार, समाज सुधार, अन्धविश्वासों व सामाजिक असमानता आदि दूर करने में जो सफलता मिलनी चाहिये थी, वह न मिली। यह भी कम नहीं है कि सन् 1863 से सन् 1883 तक के अपने मात्र 20 वर्षों के प्रचार से उन्होंने भारत में धर्म व समाज सुधार की सुदृण नींव डाली और देश को स्वतन्त्रता के मार्ग पर आरूढ़ कर, अपने रक्षितों के द्वारा विषपान द्वारा विश्वासघात से ग्रस्त होकर बिना किसी शिकायत के, संसार से चले गये। हम अनुभव करते हैं कि न केवल भारत के वैदिक मतों के अनुयायी ही अपितु विश्व के सभी मनुष्य स्वामी दयानन्द के सत्यधर्म के अन्वेषण और उसके प्रचार के लिए सदा सदा के लिए ़ऋणी हंै। ‘ईश्वर के प्यारे, भारत माता के दुलारे वेदों वाले स्वामी दयानन्द, तेरी जय जयकार हो’ शब्दों के साथ लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**